[स] मौर्यकालीन शासन-व्यवस्था

मौर्यकालीन शासन का ज्ञान मुख्यतः कौटिल्य से होता है। वह चन्द्रगुप्त का मंत्री था जो शासन को व्यवस्थित करने के लिए अर्थशास्त्र नामक ग्रँथ लिखा था। डॉ० काशीप्रसाद[1] जायसवाल तथा आचार्य[2] भगवती प्रसाद पांथरी ने माना है कि यही बिन्दुसार के समय में भी इसका मंत्री था और अशोक के गद्दी पर बैठने के प्रारम्भिक दिनों तक इस पद पर बना रहा। पर इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है फिर भी चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित शासन की परम्परा आज तक परिवर्तित रूम में चलती आ रही है। अशोक ने इसमें अपनी नीति और परिस्थितियों के अनुसार कुछ सुधार किया था। अशोक का शासन चन्द्रगुप्त की अपेक्षा अधिक सरल था क्योंकि उसमें धम्म की आस्था ने उसके भीतर प्रत्येक क्षेत्र में इसके भावनात्मक स्वरूप को लाने का प्रयास किया था। चन्द्रगुप्त का शासन इसलिए अति कठोर था कि उसे यवनों तथा नन्दों के शत्रुता को रोकना था जिन्हें इसने उन्मूलित किया था। पर इस कठोरता की सीमा नृशंसता नहीं थी। तभी मुद्राराक्षस में कहा गया है कि—'शारद निशासमुद्गेतनेव पूर्णिमाचन्द्रेण चन्द्राश्रियाधिक नन्दन्ति प्रकृतयः'—अर्थात इसके राज्य में जनता शरद निशा के पूर्ण चन्द्र से भी अधिक सुख शांति का अनुभव करती थी।[3]

शासन का आदर्श—मौर्य शासक प्रजावत्सल थे। चाणक्य ने कहा है कि इसका शासन उन नन्दों से भिन्न था जो अर्थलोलुप थे। यह प्रजा के दुख दूर करने में ही सुख मानता था।[4] तभी अशोक ने सभी को अपना पुत्र कहा है तथा अपने कार्यों का आशय इस लोक तथा परलोक में प्रजा का कल्याण करना बताया है। इसी को अपना सतत् परीश्रम मानता है।[5] अर्थशास्त्र में भी चन्द्रगुप्त के शासन के परिप्रेक्ष्य में ऐसा ही चाणक्य के इस कथन से ज्ञात होता है कि 'प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितं' अर्थात् प्रजा का हित-सुख ही राजा का हित-सुख होता है।[6] मञ्जुश्री मूक्तकल्प में चन्द्रगुप्त अपने राज्यारोहण के समय प्रजा को दिए गए वचनो का पालन करने वाला तथा धर्म के आधार पर शासन करनेवाला धर्मराजा कहा गया है।[7] इस वंश के शासन का निचोड़ अशोक के इस कथन में समाहित है कि 'कटवियमते हि मे सवलोकहिते'

अर्थात् सर्वलोकहित मेरा कर्तव्य है तथा 'नास्ति हि क्रमतर सर्वलोकहितेन' अर्थात् लोकहित से बढ़कर दूसरा कोई काम नहीं है।

शासन संगठन—राज्य का प्रमुख राजा था। वही पूरी व्यवस्था का नियंत्रक था। सभी प्रान्त उसी के अधीन प्रान्तपतियों द्वारा शासित थे। उसका साम्राज्य हिमालय से लेकर समुद्र तक हिमवात् आ समुद्रम् फैला था। इसमें स्थित छोटे-बड़े राजतंत्रों और गणतंत्रों को इसने उखाड़ कर एक छत्र राज्य स्थापित किया था। चन्द्रगुप्त का राज्य सार्वभौमिकता का प्रमाण था। इसने विशाल चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया था। कुछ राज्यों पर मौर्य अधिपति का शासन भी यहाँ था पर वे अपने आन्तरिक मामलों में शासन के लिए स्वतंत्र थे जैसे—यवन, कम्बोज, गांधार, राष्ट्रिक, पैठान, नाभपंक्ति, भोज, आंध्र, पुलिन्द, आटविक, पितनिक तथा अपरान्त। ये केन्द्र के निर्देशों की अनदेखी नहीं कर सकते थे। इनकी देखरेख का अधिकार धर्ममहात्रों को सौंपा गया था।[1]

साम्राज्य क्रमशः प्रान्तो, जनपदों और ग्रामों में बंटा था। इनके लिए अलग-अलग अधिकारी नियुक्त थे। अशोक के अभिलेख के अनुसार मौर्य साम्राज्य मुख्यतः पांच प्रान्तों में विभक्त थे जिनकी अपनी राजधानियां थीं :[2]

(1) गांधार (उत्तरापथ)—राजधानी तक्षशिला
(2) अवन्ति—राजधानी उज्जैनी
(3) कलिंग—राजधानी तोसली
(4) दक्षिणापथ—राजधानी स्वनगिरि
(5) गृहप्रान्त—राजधानी पाटलिपुत्र

इन प्रान्तों के लिए राजा द्वारा प्रान्तपति नियुक्त किया जाता था।[3] ये बाहरी तथा राज्य परिवार के भी होते थे तभी इनके लिए आर्यपुत्र या कुमार संबोधन अशोक के अभिलेखों में मिलता है।

प्रान्त छोटी-छोटी इकाइयों मे बँटा था—जनपद तथा ग्राँम। ग्राँमों के भी समूह अलग-अलग संख्यात्मक दृष्टि से बने थे चार थे—स्थानीय (880 गाँवों का), दोणमुख (400 गाँवों का), खारवटिक (200 गाँवों का) तथा संग्रहण (10 गाँवों का)[4]। इनकी सबसे छोटी इकाई गाँव होती थी। इन गाँवों को प्रशासनिक दृष्टि से विभिन्न कोटियों में रखा गया था—परिहारक (करमुक्त ग्राम), आयुधीय (केन्द्र की सेना देन वाला), करद (जो पशु तथा हिरण्य में कर चुकाते थे) तथा विष्टि (जो बेगार देते थे)[5]।

केन्द्रीय शासन

राजा—शासन का प्रमुख राजा होता था। वही प्रमुख न्यायाधीश, धर्मप्रवर्तक एवं सेनापति होता था। वही प्रमुख निरीक्षक, अधिकारियों का नियोक्ता, राजस्व कर निरीक्षक, मंत्रियों के विभागों

का बँटवारा करने वाला आदि होता था।[1] यही प्रमुख सेनापति तथा संधि-विग्राहक होता था। देश की सुरक्षा इसका प्रमुख धर्म होता था। सामाजिक व्यवस्था का यही नियंत्रक होता था।[1] दण्ड इसके लिए योगक्षेम का साधन था।[2] राज्यधर्म था सदा कर्त्तव्यरत रहना।[3]

मंत्री—राज्य संचालन के लिए पुरोहित तथा मंत्रियों की नियुक्त राजा करता था। इनके गुणों का उल्लेख अर्थशास्त्र में दिया गया है कि वीर, दूरदर्शी, निडर और चतुर हों।[3] पुरोहित का स्थान प्रमुख होता था जिसका अनुसरण राजा और राजपुत्रों को करना होता था।[4] राजा को पुरोहित के निर्देश पर कार्य करना होता था। साथ ही मन्त्रिपरिषद निर्देश और धर्मशास्त्रों के प्रतिपादित सिद्धान्तों का अनुपालन शासन में करना होता था।[5]

मंत्रिपरिषद—अर्थशास्त्र का मंत्रिपरिषद और अशोक का परीषा एक ही है। यह राजा के कार्यों पर अंकुश रखता था। यह विचारणीय विषयों को गोपनीय रखता, एकान्त में बैठक करता था। इस बैठक में 3-4 ही मंत्री रखे जाते थे कि मंत्रणा गोपनीय रहे। अलग-अलग मंत्रियों से अलग-अलग भी राय लेते थे। विशेषतः संकट दूर करने, कार्य प्रारम्भ करने, बल प्रयोग, संधि-विग्रह आदि पर मंत्रणा की जाती थी। इनका वेतन 17000 पण था। कर्मचारियों के कार्य निरीक्षण तथा निर्देश देने का इनका अधिकार था।

पण (चाँदी की मुद्रा)

अधिकारी—राज्य के प्रमुख अधिकारी थे—युवराज जो जेष्ठ राजकुमार होता था। प्रशास्तु शास्त्री के अनुसार नगराधिकारी[6], त्रिपाठी के अनुसार कारागार प्रमुख[7] तथा मुकर्जी के अनुसार शस्त्रागार प्रमुख था।[8] समाहर्तृ राजस्व मंत्री होता था। यही जनकल्ण के कार्यों का निरीक्षक, व्यवस्थापक, गणना अधिकारी तथा न्यायामात्य भी था। नायक दलीय सेनानायक और पुलिस का मुख्याधिकारी होता था। दण्डपाल सेना की सामग्री जुटाने वाला था।[11] दुर्गपाल सीमा नियंत्रक था।[12]

नगर शासन

नागरक प्रमुख अधिकारीहोता था। इसके सहायक गोप और स्थानिक थे। यह प्रत्येक परिवार के सदस्यों का विवरण और आय-व्यय का चिट्ठा तैयार करता था। इसको राज्य में आये यात्रियों

तथा धार्मिक स्थानों के सम्प्रदायों की सूचना भेजना पड़ता था। शिल्पी, वैष्य, वेष्या आदि भी अपना पूरा विवरण इसे देते थे। वैद्यों को भी इसे गुप्त रोगों की सूचना देनी होती थी। प्राकृतिक विपदा से नगर को सुरक्षित रखने जैसे पानी भरने, गर्मी में आग गलने आदि से यह बचाव की व्यवस्था रखता था। सड़कों के चौराहों पर इसी से पानी भरे घड़े रखे जाते थे। राजभवन तथा देवालयों को भ्रष्ट करने वालों को यह दण्ड देता था। भेरी बजाकर निषिद्ध समय की सूचना दी जाती थी। जो इस समय बाहर निकलता वह दण्ड पाता था। ऐसे समय विशेष परिस्थिति में घर से निकलने वाले हाथ में लालटेन लेकर निकल सकते थे। आग रक्षक भी नियुक्त थे। समस्त घटनाओं की सूचना यही राजा को देते थे। खोई वस्तु इसी के पास रखी जाती थी। बंधनागार का प्रबंधन भी इसी का दायित्व होता था।

मेगस्थनीज ने निम्नलिखित प्रकार के उच्चाधिकारियों और उनके कार्यों का उल्लेख किया है :–

(1) जिलाध्यक्ष—यह निरीक्षण, सिंचाई तथा भूमि का नाप करता था। आखेटकों का भी निरीक्षण तथा नियंत्रण इसका धर्म था। कर वसूली, कृषि और उद्योगों का नियंत्रक यही होता था। यातायात की सुविधा हेतु यह मील का पत्थर रास्ते पर लगवाता था।

(2) नगर अध्यक्ष—इनकी सँख्या 30 होती थी जो 6 समीतियों में 5-5 की संख्या में बँटे होते थे। प्रत्येक समिति का अलग-अलग कार्य होता था। पहली समिति उद्योग धंधों की देख-रेख करती थी। दूसरी विदेशियों की देख-रेख, ठहरने का प्रबंध, सुरक्षा, बीमारी में परिचर्चा, करने पर उनके सामानों को सुरक्षित उनके संबंधियों के पास भिजवाती थी। तीसरी जन्म-मरण का विवरण रखती थी। चौथी नाप-तौल की जाँच करती, वस्तुओं पर कर वसूलती तथा समय से सामान के बाजार में लाने की बाध्यता बनाती थी। पाँचवीं तैयार माल के सुरक्षा की व्यवस्था करती। छठी बिके माल पर 1/10 कर वसूलती थी। पर सभी सदस्य बाजार के मूल्य के नियंत्रण के जिम्मेदार होते थे, सामूहिक स्थानों की सुरक्षा तथा उनकी मरम्मत का भी दायित्व इन्हीं का होता था।

न्याय

दो प्रकार के न्यायालय होते थे—कण्टकशोधन (फौजदारी) तथा धर्मस्थीय (दीवानी)। कण्टक शोधन में तीन न्यायाधीश बैठकर निर्णय करते थे। गुप्तचर होते थे जो अपराधी का पता लगाते थे। गूढ़पुरुष राजकीय अधिकारियों के कार्यों पर निगाह रखते थे।

प्रमुख अपराध थे व्यापारियों, शिल्पियों, भिक्षु आदि का भेष बदल कर चोरी करना, ~~गर्भपात करना आदि~~। विभिन्न उद्योगों में लगे लोगों में से चोर का पता लगाना पड़ता था। दण्ड भी अपराध के अनुरूप दिया जाता था। चार प्रकार के दण्ड थे—कोड़ा लगाना, उल्टा टाँगना तथा पानी में डालना तथा जाड़े में घास पर सुलाना। दीवानी अदालत में भी तीन न्यायाधीश न्याय करते थे। राज्य के विभिन्न भागों में जनता की सुविधा के लिए अदालतें बनी थीं। इनमें विवाह, दाय, ऋण, चारागाह, धरोहर, दास आदि के मुकदमें देखे जाते थे। शुद्ध चरित्र के आमात्य न्यायाधीश बनाये जाते थे। जो कर्मचारी गलत बयान लिखता या जो न्यायाधीश दबाव या घूस के कारण गलत फैसला देता था उसके लिए भी दण्ड का प्रावधान था। सही अपराधी को छोड़ने

पर मृत्युदण्ड दिया जाता था। जो मुकदमे समाप्त हो गये हैं उनको पुनः चालू कराने के लिए अर्थदण्ड देना होता था। बिना अपराध के अर्थदण्ड लगाने पर राजदण्ड दिया जाता था।

जिन लोगों का सुधार बन्दीगृह में हो जाता था उन्हें बन्दीमुक्त करते थे। बाल, वृद्ध, अनाथ, व्याधिग्रस्त बन्दिओं को बंदीगृह से मुक्त करते थे। युवराज की नियुक्ति, राजपरिवार में पुत्र होने, विशेष विजय पर्व आदि पर बंदियों को बंधन मुक्त किया जाता था।

पुलिस और गुप्तचर विभाग

पुलिस के लिए 'रक्षिन' तथा गुप्तचरों को 'गूढ़पुरुष' शब्द का प्रयोग होता था। पुलिस रात को घरों की सुरक्षा करती, अपराधियों का पता लगाती थी। ये 'यागरक्षक' भी कहलाते थे क्योंकि घटनाओं पर निगाह रखते और अपराधियों का पता लगाते थे।

बाहरी भीतरी शत्रुओं, अधिकारियों आदि के विषय में पता लगाकर राजा को सूचना देने का कार्य गूढ़पुरुषों का था। ये ही राजमण्डल के अट्ठारह तीर्थों पर निगाह रखते थे। इनकी नियुक्ति राजा विश्वसनीय और शुद्ध आमात्यों में की राय के बाद करता था। इनका पद विशेष महत्व का होता था।

गुप्तचरों के दो मूल भेद थे—(1) सँस्था—ये एक निश्चित स्थान पर रह कर कार्य करते थे तथा (2) संचार—ये घूम-घूम कर देश-विदेश से सूचनाएँ एकत्र करते थे। स्त्री-गुप्तचर भी थीं। इसमें गुप्तचर कई कोटियों के होते थे यथा—सत्री, तीक्ष्ण, परिव्राजक तथा रसद। पर एक ही गुप्तचर की सूचना पर कोई कदम नहीं उठाया जाता था। जब कई गुप्तचर एक ही सूचना की पुष्टि करते थे तो उसे सत्य मानकर कार्यवाही की जाती थी। जो गुप्तचर झूठी सूचना देता था वह दण्ड का भागी होता था। उसे पद से हटा दिया जाता था। इनका कार्य राज्य के भीतर होने वाली घटनाओं का पता लगाना होता था। इसमें भिखारियों, वेष्याओं की भी सहायता करते थे। योग्य तथा विश्वसनीय व्यक्ति ही इस पद पर नियुक्त किये जाते थे।[1]

दण्ड व्यवस्था

झूठी गवाही देने पर अंग-भंग करते थे। दूसरे का अंग-भंग करने वाले अपराधी का अंग-भंग भी किया जाता था। शिल्पी के अंग-भंग करने की सजा प्राणदण्ड थी। कौटिल्य के अनुसार न दण्ड अधिक कठोर होने चाहिए न अति सरल। अपराध और अपराधी की स्थिति के अनुसार दण्ड दिया जाता था। शारीरिक दण्ड, अर्थ दण्ड और मृत्यु दण्ड का विधान था। अर्थदण्ड तीन प्रकार के थे—पूर्वसाहस दण्ड-48 से 96 पण का दण्ड, मध्य साहस दण्ड 200 से 500 पण का दण्ड तथा उत्तम साहस दण्ड-500 से 1000 पण का दण्ड। मृत्यु दण्ड सबसे बड़ा था। शारीरिक दण्ड के साथ-साथ अर्थदण्ड भी दिया जाता था। अर्थदण्ड भी बदलने का विधान था।

पण (चाँदी की मुद्रा)

दौत्य सम्बंध

विदेशों से दौत्य सम्बन्ध सभी मौर्य शासकों ने रखा है। चन्द्रगुप्त के दरबार में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज रहता था। बिन्दुसार के दरबार में सीरियायी दूत एरेस्टोफनीज रहता था तथा अशोक

के धर्म महामात्र पड़ोसी यवन आदि देशों में जाते थे। पर इनकी विदेशी नीति शाँति की थी। ये पड़ोसियों से अच्छा व्यवहार रखते थे। कभी पड़ोसी राज्यों पर विजय की कामना नहीं करते थे। अशोक ने पड़ोसी राज्यों को सुख देने की बात की है।

स्थानीय शासन

ग्राँम शासन मौर्य शासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्रामिक ग्राम का प्रधान शासक होता था। पुरुष सैनिक व आर्थिक प्रशासन के लिए नियुक्त थे। गाँववृद्धों की सभा की सहायता से यह शासन करता था। यह सभा गाँव की समस्याओं का निपटारा करती थी। जब विवाद उठता था तो यही उसका निपटारा भी करती थी। ग्रामिक का सहयोग गांव के लोग भी करते थे। गाँव की सभी भूमि राजा की होती थी।[1] यह राजा का अधिकार था कि मृतक के नाम की भूमि उसके पुत्र को दे अथवा न दे। पर जो भूमि ऊसर होती थी। यदि उसको गृहस्थ अपने परीश्रम से उर्वर बनाता था तो उस पर किसान का ही स्वत्व होता था। अगर किसान उस पर किसी कारण खेती न भी करे तो राजा उसको छीन कर दूसरे को नहीं देता था। पर सामान्यतया जिसके नाम उर्वर भूमि का पट्टा होता था और वह खेती नहीं करता था तो उस भूमि पर राज्य हर्जाना वसूलती थी।

राज्य खेती के बढ़ावा के लिए असमर्थ किसानों को बीज, हल, बैल आदि उपलब्ध कराता था। पर यह ऋण होता था। फसल के हो जाने पर उसकी आमदनी से राज्य का यह ऋण लौटा दिया जाता था। कृषि की महत्ता समझ राज्य कृषकों के बीमार होने पर उनके दवा के लिए भी पैसा देता था कि वह ठीक होकर खेती करेगा। कौटिल्य ने इसी से राजा को पिता की तरह अनुग्रह करने वाला कहा है।[2] विद्वान ब्राह्मणों तथा पुरोहितों का भी निःशुल्क भूमि दी जाती थी। अधिकारियों को भूमि देते थे पर इसे न वे बेच सकते थे न रेहन रख सकते थे। यह व्यवस्था करद (लगान) वाले कृषकों के साथ लागू थी जो स्वयं भूमि को उर्वर बनाते थे वे अकारद कृषक कहलाते थे। उन पर यह प्रतिबंध नहीं होता था।

गाय के दूसरे अधिकारी गोप तथा स्थानिक थे। भूमि की सिंचाई के लिए नदियों पर बांध बाधने, वर्षा के जल को रोकने आदि के लिए राज्य को निर्देश दिया जाता था।